वर्ष : 4 अंक : 1 जनवरी-मार्च 2014 मूल्य : 25 रुपये

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

पारस-परस

सृजन-स्मरण

महादेवी वर्मा

(जन्म : 26 मार्च, 1907; निधन : 11 सितम्बर, 1987)

पथ न मलिन करता आना
पद चिह्न न दे जाता जाना
सुधि मेरे आगम की जग में
सुख भी सिहरन हो अंत खिली

विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली

– महादेवी वर्मा

वर्ष : 4, समग्रांक : 12, जनवरी–मार्च, 2014 रजि. नं. यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस-परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं
की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

अनुक्रमणिका

संरक्षक मंडल
अभिमन्यु कुमार पाठक;
अरुण कुमार पाठक;
राजेश प्रकाश;
डॉ. अशोक मधुप
डॉ. सुनील जोगी

संपादक
शिवकुमार बिलग्रामी

संपादकीय कार्यालय
418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभयखण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद – 201012
मो. : 09868850099

लेआउट एवं टाइपसेटिंगः
आइडियल ग्राफिक्स
मो॰ : 9910912530

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक द्वारा
पारस–बेला न्यास के लिए
डा॰ एल॰ पी॰ पाण्डेय द्वारा प्रकाश पैकेजर्स,
257, गोलागंज, लखनऊ तथा आप्शन प्रिन्टोफास्ट,
पटपड़गंज इन्ड. एरिया, नई दिल्ली से मुद्रित
एवं ए–1/15 रश्मिखण्ड, शारदा नगर योजना,
लखनऊ, उत्तर प्रदेश से प्रकाशित

पारस–परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है । पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

संपादकीय		2
पाठकों की पाती		3
श्रद्धा सुमन		
बाबू जी अब आते होंगे....	डा॰ अनिल कुमार पाठक	4–6
कालजयी		
मैं तुमको प्यार किया करता हूँ	पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'	7
जाग तुझको दूर जाना	महादेवी वर्मा	8
ओ लहर	अज्ञेय	9–10
व्यवस्था	कैलाश गौतम	11
अहं	नरेश मेहता	12
बात बोलेगी	शमशेर बहादुर सिंह	13
समय के सारथी		
कलम हमारी	प्रेम 'निर्मल'	14
यथार्थ के दोहे	डॉ॰ अशोक मैत्रेय	15
महंगाई का अर्थशास्त्र	राजेन्द्र त्यागी	16
ओ मेरे भारतवर्ष	महावीर वर्मा 'मधुर'	17
अगर हो जुल्म बेबस पर....	राजेन्द्र निगम 'राज'	18
ओ वासंती पवन....	डॉ॰ कुअँर बेचैन	19
कुअँर बेचैन से साक्षात्कार		20–21
नारी–स्वर		
वो पनघट तट बन्द हो गया	कमलेश त्रिवेदी 'फार्रूखाबादी'	22–23
विश्वास की नींव....बेटियाँ	पूनम माटिया	24
बसंत	निरुपमा मिश्रा	25
पथिक	मनीषा जोशी मनी	26
चाहत है तुझको मेरी	शुभदा वाजपेयी	27
तुम बिन	डॉ॰ स्वीट एंजिल	28
प्रलय	गुल सारिका	29
क्या तुम्हें एहसास है	महुआ महक	30
नये रचनाकार		
समय की किताब	उदय प्रताप	31
वो अक्सर हमें भूल जाते हैं	नरेश मलिक	32
सागर की गहराई	विमलेन्दु सागर	33
क्या तुम्हे याद है	सौरभ सीतापुरी	34
राहों से गुजरते हुए	बादल चौधरी	35
आया रंगों का त्यौहार	राधे बैरवा	36
वो तेरी जान होती है	दीपक कुमार शुक्ला	37
साहित्यिक हलचल	सखी सिंह	38–39
अंत में		
कौन मेरा है हमसाया	शिवकुमार बिलग्रामी	40

संपादकीय

जय शंकर प्रसाद की कामायनी का समापन इन पंक्तियों से होता है :–

समरस थे जड़ या चेतन
सुंदर साकार बना था;
चेतनता एक विलसती
आनंद अखंड घना था।

कामायनी का पूरा अभीष्ट चिंता से आनन्द तक की यात्रा है। वस्तुतः सद्साहित्य का अभीष्ट भी यही हैं–चिंता लोक से यात्रा की शुरूआत कर पाठक को आनन्द लोक तक ले जाना। यदि कोई भी साहित्य समय सापेक्ष चिंताओं को शब्द नहीं देता है, और उन शब्दों को आनन्द के स्वर नहीं बना देता है, तो वह साहित्य सद् साहित्य की श्रेणी में नही आता। सद् साहित्य कालजयी और सर्वग्राही होता है।

लेकिन साहित्य के बारे में एक दूसरा विचार भी है। कुछ लोग साहित्य की व्याख्या – विचार संचार के एक माध्यम के रूप में करते हैं। उनका कहना है कि विचार–संचार के जैसे दूसरे माध्यम हैं वैसे ही साहित्य और काव्य भी है। पहले कहा जाता था कि काव्य या सद् साहित्य विचार–संचार का स्थायी माध्यम है, यह मन मस्तिष्क से होते हुए हृदय तक उतर जाता है और देर तक अपना प्रभाव बनाये रखता है। इसलिए साहित्य और साहित्यकार को समाज में बहुत ऊँचा दर्ज़ा प्राप्त था। लेकिन आधुनिक सोच यह है कि आजकल प्रविधि और नई तकनीकों का प्रयोग जीवन दशाओं को तेज़ी से बदल रहा है। जीवन दशाओं और परिस्थितियों के बदलने के साथ ही, हमारी सोच में भी तेज़ी से परिवर्तन आ रहा है। साहित्य की पुरानी संरचनाएं, निरंतर और द्रुतगति से परिवर्तित हो रही सोच को प्रख्यापित नहीं कर पा रही हैं। नव विचारों को प्रख्यापित करने के लिए आवश्यक है कि साहित्य और विचार अभिव्यक्ति की नई संरचनाएं निर्मित की जायें और प्रयोग में लायी जायें। अतएव उन्होंने इंटरनेट सहित तमाम दूसरे आधुनिक उपकरणों के माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त करना शुरू कर दिया है। इस तरह हमारे सामने साहित्य का एक नया रुप 'इंटरनेट साहित्य' सामने आ रहा है। यह इंटरनेट साहित्य उन साहित्यकारों के लिए बहुत बड़ी चुनौती है जो साहित्य का मूल्यांकन चिन्ता और आनन्द के बीच की यात्रा के रूप में करते हैं। इंटरनेट साहित्य में चिंताओं की अभिव्यक्ति तो है लेकिन आनन्द की निष्पत्ति नही है। इसीलिए परंपरा प्रेमी साहित्यकार इंटरनेट साहित्य को 'अपसाहित्य' के रुप में प्रचारित कर रहें हैं।

बहरहाल, 'सद्साहित्य' और 'अप साहित्य' के बीच की इस खींचातानी में जिस हितधारक का सर्वाधिक हित प्रभावित हो रहा है वह हैं साहित्य प्रेमी पाठक, जो कभी कामायनी के पन्ने खोलता है और कभी इंटरनेट पर उपलब्ध साहित्य के पृष्ठ, और फिर नवीन अर्वाचीन के विभ्रम में फंस जाता है।

मित्रों, पारस–परस एक काव्य–पत्रिका है जो साहित्य के केवल एक सीमित पक्ष का ही उद्घाटन करती है। लेकिन उस सीमित पक्ष का उद्घाटन करते समय भी हमारा प्रयास रहता है कि हम इसमें कविताओं की विविधता के साथ–साथ कविताओं के विविध रंगों को भी उद्घाटित करें। इसीक्रम में हमने इसके कालजयी, समय के सारथी, नारी स्वर और नवोदित रचनाकार सभी स्तम्भों में आपके लिए उत्कृष्टतम कविताओं का चयन किया है। आशा है आप को ये पसन्द आयेंगी।

पारस–परस काव्य पत्रिका के प्रेरणा स्रोत स्वर्गीय पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून' की 23 जनवरी, को छठी पुण्यतिथि है। त्यागपूर्ण और तपस्वी जीवन को रेखांकित करते हुए उनके सुयोग्य पुत्र डा. अनिल कुमार पाठक ने 'बाबू जी' की स्मृति में भावपूर्ण काव्य अभिव्यक्तियाँ लिपिबद्ध की हैं, जिन्हें हम श्रद्धांजलि के रूप में पत्रिका के आरम्भ में दे रहें हैं और मुख पृष्ठ पर उनका चित्र प्रकाशित कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त इस बार, जैसा कि हमने पिछले अंक में अल्लेख किया था कि चोटी के एक कवि का साक्षात्कार, प्रकाशित करेंगे...., हम ख्याति लब्ध कवि और गीतकार डॉ॰ कुअँर बेचैन से साक्षात्कार प्रकाशित कर रहे हैं।

जिन कवियों/रचनाकारों की रचनाओं को इस अंक में प्रकाशित किया गया है, हम उनके प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं।

शिवकुमार बिलग्रामी
संपादक

माननीय संपादक महोदय,

सर, पिछले कुछ समय से मैं पारस–परस का पाठक हूँ। आजकल साहित्यिक कविताओं का बड़ा अभाव है और कविताओं को तो आज के दौर में कोई भी जानी–मानी हिन्दी पत्रिका जगह ही नहीं देती है। लेकिन मैंने पारस–परस पहली पत्रिका देखी है जिसमें मिर्फ और सिर्फ कविताएं प्रकाशित की जाती है और वो भी साहित्यिक कविताएं। मैं इसके लिए आपको धन्यवाद देता हूं। एक बात मैं खास तौर पर यह भी कहना चाहता हूँ कि आप नये–पुराने कवियों के साथ दिवंगत कवियों की भी अच्छी कविताओं का पुनर्प्रकाशित कर रहे हैं, इससे तो आप बड़ा पुण्य का काम कर रहे हैं। आप न केवल हिन्दी काव्य को बढावा दे रहें है अपितु हिन्दी के जाने–माने कवियों से मेरे जैसे युवा पीढी के पाठकों को, एक तरह से उनको पढने का मौका दे रहे हैं। मैं इसके लिए आपका बहुत–बहुत आभार व्यक्त करना चाहता हूँ। मैं एक बात और कहना चाहता हूँ कि आप सृजन स्मरण के रूप में जिन दिवंगत कवियों का चित्र प्रकाशित कर उन्हें श्रृद्धांजलि देने का कार्य करते हैं, इससे निश्चित रूप से इन दिवंगत कवियों का आर्शीवाद आपको मिलता होगा। आप अपने इन शुभ प्रयासों में सदैव सफलता हासिल करे,

अविनाश श्रीवास्तव
चन्द्रनगर, कानपुर

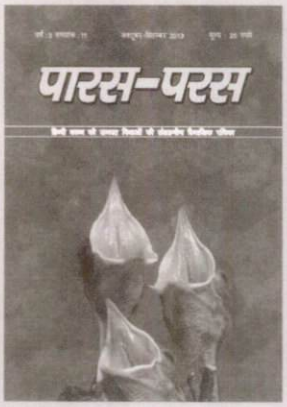

आदरणीय महोदय,

अक्टूबर–दिसम्बर, 2013 का अंक पढ़ा । इस बार पारस–परस में आपने जितनी भी रचनाएं दी हैं, शुरू से अंत तक सब बेहतर रचनाएं हैं। डॉ॰ अनिल कुमार पाठक का बाबू जी की याद में लिखा गया गीत बहुत अच्छा लगा। वैसे तो इस अंक की सभी रचनाएं मुझे बेहद अच्छी लगीं लेकिन डॉ॰ हरिवंश राय बच्चन का गीत – मुझे पुकार लो और सर्वेश चन्दौसवी का गीत – बंद हुआ है गौरैया का आना आँगन में काफी अच्छा लगा। पंडित सुरेश नीरव का अब सागर–मंथन होगा... और डॉ॰ कीर्ति काले की कविताएं भी अच्छी लगी। इस अंक में आपने हास्य–व्यंग्य की एक भी कविता नही दी है। आशा है भविष्य में हास्य कविताओं को भी उचित स्थान मिलता रहेगा।

दुर्गेश्वरी सिंह
ग्रेटर नोएडा

रचनाकार अपनी रचनाएं और प्रतिक्रियाएं कृपया निम्नलिखित पते पर भेजें–

संपादक : पारस–परस
418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभय खण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

e-mail
paarasparas.lucknow@gmail.com
shivkumarbilgrami99@gmail.com

बाबू जी अब आते होंगे....

–डा॰ अनिल कुमार पाठक

बाबू जी अब आते होंगे....
बिन नागा वे रोज सबेरे
हर भिनसारे
प्रातः बेला घर से निकले
चले दुआरे
मड़ई में लेने को चारा
किसे पुकारा
बाबू जी ने
शायद प्यारी गैया को, बछिया को
जो तकती रहती राह
रोज भोर में
आस लगाये
बाबू जी अब आते होंगे....

x ..... x x

गैया–बछिया को देकर चारा
उन्हें दुलारा औ' पुचकारा
पागुर करती गाय
रम्हाती उन्हें देखकर
बछिया करती है कल्लोलें
बाबू जी का नित कर्म यही
दिनचर्या अब यह जीवन की
नाँद में चारा
फिर पुचकारा और दुलारा
गैया को उसकी बछिया को
जैसे कोई अपना
सगा–संबंधी, बन्धु–बान्धव
आज मिला है बहुत दिनों पर
वर्षों से जो बिछुड़ गया था
दूर देश में निरा अकेले
किसी मोड़ पर....

x ..... x x

कैसे समझते होंगे बाबू
गैया–बछिया की भाषा
गैया भी क्या जाने आखिर बाबू की भाषा
बार–बार यह प्रश्न
कौंधता मेरे मन में....

x ..... x x

फिर पकड़ी पगडंडी खेतों की....
खेत–फसल–खलिहान
ताल–तलैया–पोखर
बाग–बगीचे
देख उन्हें कुछ गाते
कुछ शरमाते
बीच–बीच में इनसे कुछ बतियाते
आज सुबह भी
बाबू जी आये हैं
ना जाने क्या–क्या बतियाने
लगता है आये हैं इनको
कल के आगे की बात बताने
उन्हें सुनाने जो कुछ बीता
कल से आज तक
मैं सोचा करता हरदम
आखिर क्या बतियाते होंगे?
वैसे भी
इन सारे प्यारे और दुलारे
अपने मित्रों से

जारी....

वे एक अकेले
आखिर कैसे बतियाते होंगे
उनको कैसे समझाते होंगे
क्या उनका रूप विलक्षण
श्री रामचन्द्र सा
जो अमित रूप में प्रकट हुये
अवधवासियों से मिलने को
या फिर कान्हा जैसे
जो क्रीड़ा करते संग सभी के
एक साथ ही....

X ..... X X

देर भई बाबू ना आये...
इसी वक़्त तो रोज सबेरे
बाबू जी आते थे
झौवा में ले भूसा–चारा,
चूनी–चोकर भरी चँगेरी
कभी–कभी तो
लग जाती थी उनको ठोकर
फिर भी कभी न गुस्सा ना झल्लाहट
जारी उनका आना–जाना
बिन नागा के
पर हुआ आज क्या?
लगता है वे आज
सुबह ही गये कचहरी
फिर भी मन में क्यूँ लगता है
कभी, कहीं न गये अभी तक
बिना मिले औ' बिना दुलारे
बिन पुचकारे
हुआ आज क्या समझ न आये
देर भई बाबू ना आये....

X ..... X X

कहाँ रह गये बाबू जी....
सुनो–सुनो एक बात जरूरी
पूछा आमों की डाली ने
''क्या है ऐसी बात जरूरी''
कहा गेहूँ की बाली ने
''क्या आज सुबह बाबू जी आये थे?
इन्तजार हम करते–करते सोच रहे हैं
ऐसा कैसे हो सकता है
बाबू जी आयें
वापस हो जायें
बिना मिले औ' बिन बतियाये''
पूछ रहें हैं ऐसे ही सब
बाबू जी के बारे में
देखो क्या कह रही कुमुदिनी
बहन करेमू से
'क्या देखा तुमने बाबू को?'
''नहीं कुमदिनी
नहीं दिखाई पड़े
सुबह से खड़े
हम राह देखते''
कहाँ रह गये बाबू जी....

X ..... X X

क्या तुमने देखा बाबू को....
धीरे–धीरे फैल गयी यह बात आग सी
एक–दूसरे से यह पूछा–तांछी
क्या तुमने देखा बाबू को?
''लगता है कुछ अनहोनी है''
सुना चने को जब यह कहते
गेहूँ की बाली ने
''चुप रह थोथे चने
तुम्हारी आदत यही पुरानी

जारी....

बिना बात बजता रहता है''
''क्या है गेहूँ की बाली?''
बोल पड़ी आम की डाली
''करता है बकवास
चना यह झूठी–मूठी
कहता है सुना
गाँव की बस्ती को जाती
पगडंडी पर आते–जाते लोगों को
यह कहते/बतियाते
नहीं रहे अब
बाबू जी!''
''आखिर ऐसा कैसे हो सकता है
मुझे नहीं विश्वास चने की बातों पर''
''इसीलिये तो कहती हूँ
तुम लम्बी ऊँची हो
देखो जरा गाँव की बस्ती में
बाबू जी के दरवाजे पर''
थर थर करने लगा बदन
आघात हृदय को पहुँचा
आँखों में आँसू भर आये
फिर कुछ हिम्मत जुटा
रूँधे कंठ से बोली
''भीड़ जमा है
मची हुई है अफरा–तफरी
पड़ी हुई है इक काया धरती पर
है सिर उत्तर पद दक्षिण
लगता है सच में कुछ अनहोनी है''

X ..... X X

आज न आये बाबू जी....
बछिये ने पूछा माँ से
''माँ! क्यूँ है इतनी भीड़ दुआरे
बाबू जी के
जो बढ़ती ही जाती
ये कौन–कौन से लोग
कहाँ से आये'
''समझ नहीं मुझको भी आता
कुछ भी
सुबह–सुबह
क्यूँ आज–अचानक
बाबू जी के दरवाजे पर
बढ़ता रेला लोगों का''
''ये कैसी आवाजें
रोने की
यह क्रन्दन–चीत्कार
हुआ क्या?''
अरे–अरे! यह किसकी काया
जो लिपटी है धवल वस्त्र में
बँधी हुयी है टिकठी में....''
लगता है सच में कुछ अनहोनी है....

X ..... X X

पुचकारेगा कौन हमें अब
हमको कौन दुलारेगा?
बातें कौन करेगा हमसे
हमको कौन पुकारेगा?
हमसे क्या अपराध हुआ
साथ छोड़ तुम चले गये?
हम सबके सुख–दुख के साथी
बाबू जी तुम कहाँ गये?
बाबू जी तुम कहाँ गये....

❖❖❖

मैं तुमको प्यार किया करता हूँ

–पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

मैं तुमको प्यार किया करता हूँ।

शशि को चलता देख गगन में,
हिलते से हँसते घन में,
हृदय गगन में एक चित्र ऐसा ही
बना लिया करता हूँ।

मैं तुमको प्यार किया करता हूँ।

तारों का दल है जब हँसता,
ओसों की मधु वर्षा करता,
मायाविनि तेरी मन्द हँसी का,
मैं इनसे मोल किया करता हूँ।

मैं तुमको प्यार किया करता हूँ।

तेरे अधरों का कंपित स्वर,
सुन लेता पत्तों की ध्वनि मर्मर,
प्राची की बाल–ऊषा से मैं,
उसका गुण गान किया करता हूँ।

मैं तुमको प्यार किया करता हूँ।

तेरी आँख–मिचौली की गति,
कर देती जीवन को विस्मृति,
उसी कल्पना से मैं उर में,
उर का प्यार छिपा लेता हूँ।

मैं तुमको प्यार किया करता हूँ।

मिटने का वह संकेत तुम्हारा
देवि इसी से था मैं हारा,
जीने के साथ–साथ ही अब,
मरने का अभ्यास किया करता हूँ।

मैं तुमको प्यार किया करता हूँ।

❖❖❖

महादेवी वर्मा

*महादेवी वर्मा का जन्म 26 मार्च, 1907 को उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद जनपद में हुआ था। आधुनिक हिन्दी काव्य की सर्वाधिक सशक्त कवियित्री होने के कारण इन्हें आधुनिक **मीरा** कहा जाता है। यह छायावाद चतुष्टय की एक प्रतिनिधि कवियित्री हैं। छायावादी काव्य को जहां प्रसाद ने प्रकृतितत्त्व दिया, निराला ने उसमें मुक्त छंद की अवतारणा की, पंत ने उसे सुकोमल कला प्रदान की, वहीं महादेवी जी को छायावाद में प्राण–प्रतिष्ठा करने का श्रेय प्राप्त है। इन्हें इनके साहित्यिक योगदान के लिए भारत–भारती, पदमश्री और पद्म विभूषण जैसे सम्मानो से सम्मानित किया गया है। इनका निधन 11 सितम्बर, 1987 को इलाहाबाद में हुआ।*

जाग तुझको दूर जाना

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना।
जाग तुझको दूर जाना!

अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले!
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले,

आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
आग या विद्युत्–शिखाओं में निठुर तूफान बोले!

पर तुझे है नाश–पथ पर चिन्ह अपने छोड़ आना!
जाग तुझको दूर जाना!

बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बन्धन सजीले?
पन्थ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले?

विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस–गीले?

तू न अपनी छाँव को अपने लिए कारा बनाना!
जाग तुझको दूर जाना!

वज्र का उर एक छोटे अश्रुकण ने धो गलाया,
दे किसे जीवन–सुधा दो घूँट मदिरा माँग लाया!

सो गयी आँधी मलय की वात का उपधान ले क्या?
विश्व का अभिशाप क्या नींद बनकर पास आया?

अमरता–सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना?
जाग तुझको दूर जाना!

कह न ठंडी साँस में अब भूल वह जलती कहानी,
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी;

हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका,
राख क्षणिक् पतंग की है अमर दीपक की निशानी!

है तुझे अंगार–शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना!
जाग तुझको दूर जाना

❖❖❖

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म 7 मार्च, 1911 को उत्तर प्रदेश के देवरिया जिला के कुशीनगर में हुआ था। अज्ञेय जी 'प्रयोगवाद' और 'नई कविता' के प्रणेता कवि हैं। अज्ञेय जी ने आधुनिक हिन्दी काव्य के उत्तरार्ध युग को नेतृत्त्व प्रदान किया है। इन्होंने तारसप्तक, दूसरा तारसप्तक और तीसरा तारसप्तक के माध्यम से युगांतरकारी काव्य संकलनों का संपादन किया है। इन्हें इनके साहित्यिक योगदान के लिए साहित्य अकादमी सम्मान, ज्ञान पीठ सम्मान के अलावा 'गोल्डेन रीद अवार्ड' से सम्मानित किया गया है। इनका निधन 4 अप्रैल, 1987 को नई दिल्ली में हुआ।

ओ लहर

जिधर से आ रही है लहर
अपना रुख उधर को मोड़ दो
तट से बाँधती हैं जो शिराएँ मोह उन का छोड़ दो,
वक्ष सागर का नहीं है राजपथ :
लीक पकड़े चल सकोगे तुम उसे धीमे पदों से रौंदते–
यह दुराशा छोड़ दो!

आह यह उल्लास, यह आनन्द वह जाने कि जिससे
अनगिनत बाँहें बढ़ा कर ढीठ याचक–सा लिपटता अंग से
माँगता ही माँगता सागर रहा है
और जिसने जोड़ कर कुछ नहीं रक्खा–
सदा बढ़–चढ़ कर दिया है–
जो सदा उन्मुक्त हाथों, मुक्त मन, देता रहा है,
अन्तहीन अकूल अथाह सागर का थपेड़ा
सदा जिसने समुद्र छाती पर सहा है
आह! यह उल्लास, यह आनन्द, वह जाने
बहा है

सनसनाता पवन जिस की लटों से छन कर,
थम गयी है तारिका जिस के लिए
व्योम–पट पर जड़ी हीरे की कनी–सी
ज्वलित जय–संकेत–सी बन कर
हर लहर ने शोर कर जिस को
अनागत ज्योति का स्पन्दित सँदेसा भर
कहा है।
जिधर से आ रही है लहर

अपना रूख उधर को मोड़ दो:
तरी सागर की सुता है, संगिनी है पवन की,
उसे मिलने दो ललक कर लहर से :

.....जारी

वहीं उस को जय मिलेगी तो मिलेगी
या, मिलेगा लय; असंशय
तुम तरी को छोड़ दो बढ़ती लहर पर!

डर ?

कौन ? किसका ? हरहराती आ, लहर, मेरी लहर
फेन के अनगिन किरीटों को झुका कर
तू मुखर आहवान कर मेरा, मुझे वर!
जिधर से आ रही है तू
जिधर से मुझ पर थपेड़े पड़ेंगे अविराम
उधर ही तो मुक्त पारावार है।
दुर्द्धर लहर
तू आ।

ओ दुर्दान्त अथाह सागर की लहर,
दूर पर ध्रुव, अजाने पर प्रेय
मेरे ध्येय
मेरे लक्ष्य की गम्भीर अर्थवती डगर
ओ लहर!

जिधर से आ रही है लहर
अपना रूख उधर को मोड़ दो
तरी अपनी चिर असंशय
लहर ही पर छोड़ दो!

❖❖❖

निवेदन

पारस–परस पूरी तरह से एक गैर–व्यावसायिक पत्रिका है। इसका एकमात्र उद्देश्य काव्य के माध्यम से हिन्दी कवियों के पैगाम को जन–जन तक पहुंचाना है। इस पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाओं के साथ रचनाकारों का नाम और उनसे संबंधित उचित जानकारी दी जाती है जिससे रचनाकार को उचित श्रेय मिलता है। इतना ही नहीं, हम प्रत्येक अप्रकाशित / मौलिक रचना के प्रकाशन से पूर्व संबद्ध रचनाकार / कॉपीराइट धारक से लिखित / मौखिक अनुमति का भी भरसक प्रयास करते हैं । फिर भी यदि किसी रचनाकार, कॉपीराइट धारक को कोई आपत्ति है तो उनसे अनुरोध है कि वह हिन्दी काव्य के प्रचार–प्रसार को ध्यान में रखते हुए, इस पत्रिका के योगदानकर्त्ताओं से हुई भूलवश गलती को क्षमा कर दें। मौलिक / अप्रकाशित रचनाओं के कॉपीराइटधारक अपनी आपत्तियाँ paarasparas.lucknow@gmail.com पर मेल कर सकते हैं ताकि पत्रिका के आगामी अंकों में उनकी रचनाएं प्रकाशित करने से पूर्व लिखित अनुमति सुनिश्चित की जा सके और इस संबंध मे आवश्यक कानूनी पहलुओं को ध्यान में रखा जा सके।

इस कार्य को **पारस–बेला न्यास** द्वारा जन–जागरुकता और जनहित की दृष्टि से किया जा रहा है। **इस पत्रिका को प्राप्त करने के लिए संपादकीय कार्यालय से संपर्क कर सकते हैं।**

कैलाश गौतम

कैलाश गौतम का जन्म 8 जनवरी, 1944 को उत्तर प्रदेश के मौजूदा समय के चंदौली जनपद में हुआ था। कैलाश गौतम जनवादी सोचवाले ग्रामीण संस्कृति के संवाहक कवि के रूप में जाने जाते हैं। इन्हें इनके साहित्यिक योगदान के लिए उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा मरणोपरान्त यश भारती सम्मान से सम्मानित किया गया। इनका निधन 9 दिसम्बर, 2006 को हुआ।

व्यवस्था

बूँद–बूँद सागर जलता है
पर्वत रवा रवा
पत्ता–पत्ता चिनगी मालिक
कैसी चली हवा

धुआँ धुआँ चंदन वन सारा
चिता सरीखी धरती
बस्ती बस्ती लगती जैसे
जलती हुई सती
बादल वरूण इन्द्र को शायद
मार गया लकवा

चोरी छिपे जिन्दगी बिकती
वह भी पुड़िया–पुड़िया
किसने ऐसा पाप किया है
रोटी हो गयी चिड़ियाँ
देखें कब जूठा होता है
मुर्चा लगा तवा

किसके लिये ध्वजारोहण अब
और सुबह की फेरी
बाबू भैया सब बोते हैं
नागफनी झरबेरी
ऐरे गैरे नत्थू खैरे
रोज दे रहे फतवा

अग्नि परीक्षा एक तरफ है
तक तरफ है कोप भवन
कभी हाल में कभी मंच पर
रोज हो रहा चीर हरण
फरियादी को कच्ची फाँसी
कौन करे शिकवा

❖❖❖

नरेश मेहता

नरेश मेहता का जन्म 15 फरवरी, 1922 को मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र स्थित शाजापुर कस्बे में हुआ था। नरेश मेहता ने आधुनिक कविता को नई व्यंजना के साथ नया आयाम दिया। इनकी कविताओं में रागात्मकता, संवेदना और उदात्तता का एक ऐसा अनोखा संगम है जो पाठक को प्रकृति और समूची सृष्टि के प्रति पर्युत्सुक बनाता है। इन्हें इनके कृतित्त्व के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। इनका निधन सन 2000 में हुआ।

अहं

अहं की चट्टान को यह फोड़ती
आ रही आवाज किसकी?
एक गहरी चुप सभी के होठ सीखें।
बाँसुरी की कब्र पर चुप का कफन मैं।
मुट्ठियां, पत्थर किये है बन्द।
कौन?
चुप के वस्त्र को,
तेज सूई की तरह है छेदता?
विश्व के इस रेत वन पर
मैं अहं का मेघ हूँ।
उन दिशा की दासियों के संगमरमर के करों में,
जय वस्त्र मेरा है थमा।
कौन हो तुम?
चाहते किस के पलक असगुन?
क्या नहीं तुम देखते
आज मेरे अहं कन्धों पर गगन बैठा हुआ।
अहं पर ये अश्रु किसके?
हुंकार से मैं घाटियों की गोद को भरता रहूँगा
जब तलक इस प्रश्न का उत्तर न होगा।
क्या ?
मेरी अहं की मीनार की ही नींब में
इक पत्थर हिचकियाँ है ले रहा?
एक हिचकी!
प्रतिध्वनित हो चाहती इतिहास होना?
आह! मैं ऊँचा गगन,
औ' नींव का पाताल, आँसू की नदी में।

❖❖❖

शमशेर बहादुर सिंह

शमशेर बहादुर सिंह का जन्म 13 जनवरी, 1911 को देहरादून में हुआ था। ये हिन्दी कविता के प्रगतिशील त्रयी के एक स्तम्भ रहे हैं। इन्होंने इन्द्रिय–सौंदर्य का सर्वाधिक उत्तेजनापूर्ण चित्रांकन किया है, लेकिन इन्होनें कभी भी स्वयं को सौंदर्यवादी नहीं माना। इन्हें इनके कृत्तित्व के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। इनका निधन 12 मई, 1993 को अहमदाबाद में हुआ।

बात बोलेगी

बात बोलेगी
हम नहीं
भेद खोलगी
बात ही।
सत्य का मुख
झूठ की आँखे
क्या–देखें।
सत्य का रूख
समय का रूख हैः
अभय जनता को
सत्य ही सुख है,
सत्य ही सुख।
दैन्य दानव; काल
भीषण; क्रर
स्थिति; कंगाल
बद्धि; घर मजदूर।
सत्य का
क्या रंग?
पूछो
एक संग।
एक–जनता का
दुःख एक।
हवा में उड़ती पताकाएँ
अनेक
दैन्य दानव। क्रूर स्थिति।
कंगाल बुद्धि मजूर घर भर।
एक जनता का अमर वर।
एकता का स्वर।
–अन्यथा स्वातन्त्र्य इति।

❖❖❖

कलम हमारी

–प्रेम 'निर्मल'

राजनीति की गहन कालिमा
कुछ भी कह लो, हमें अखरती

हमने समझ देवता इनको
मन के मंदिर में बैठाया
निशदिन ही आरती उतारी
गीतों से आकाश गुँजाया
वह इनकी तस्वीर पावनी
अब क्यों मन में नहीं उभरती

ये उजियारे, जिनके रथ को
मोड़ दिया है अंधियारों ने
जिन्हें सिसकने और बिलखने
छोड़ दिया है अंधियारों में
बात आज उजियारों की
गले हमारे नहीं उतरती

पहले जैसे भव्य नजारे
कहों पुनः हम कैसे पायें
मानवता की वह उज्ज्वलता
कैसे आज धरा पर लायें
नैतिकता की, सत्यधर्म की
कहाँ आज वह ध्वजा फहरती

कैसे अपने पथ प्रदर्शक
अपने कैसे भाग्य विधाता
ये ऐसे बैठे अम्बर में
मानों नहीं धरा से नाता
सदा ठिठकती कलम हमारी
इन पर आकर नहीं ठहरती

❖❖❖

संपर्क : पंडित मोतीलाल वाली गली
पुराना बाजार, हापुड़

यथार्थ के दोहे

–डॉ॰ अशोक मैत्रेय

तोप नहीं गोला नहीं, है पानी की धार।
पत्थर को बालू करे, कविता वह हथियार।।

लुप्त हुई संवेदना, टूटे मन के तार।
सुन्न पड़ी हैं अंगुलियां, औंधा पड़ा सितार।।

सुलगा–सुलगा शहर है, धुआँ – धुआं है गाँव।
सबका मन है बर्फ सा, पड़ता नहीं प्रभाव।

नदिया चली पहाड़ से, पहुँच सकी ना गाँव।
उतनी उसने बाँट ली, जितना जिसका दाँव।।

फूल लडें हैं शाख से, और तने से मूल।
आपा–धापी मच रही, हिली पेड़ की चूल।।

थाह न जिसकी पा सके, स्मृति–वेद–पुराण।
बात वही समझा गयी, बच्चे की मुस्कान।।

मानव और विकास के, ये कैसे अनुबंध।
जल–थल–गगन समीर के, बिगड़ रहे सम्बन्ध।।

धीरे–धीरे मिट रही, धरती की पहचान।
पत्थर के जंगल उगे, कहाँ उगेगा धान।।

लोकतंत्र के दीप का, तेल चुराएं चोर।
गर्दन इनकी तोड़िये, बिना मचाये शोर।।

पानी में हचचल नहीं, लहर पड़ी हैं मौन।
साजिश गहरे चल रही, पत्थर फेंके कौन?

अपनी–अपनी उलझनें, अपनी–अपनी पीर।
दुनिया जाए भाड़ में, बकता रहे कबीर।।

बटमारों से जंग में, गुज़रे इतने वर्ष।
क़लम अभी थकना नहीं, शेष बहुत संघर्ष।।

घर–घर रावण हो गए, राम न मिलते आज।
अस्त्र उठाओ जानकी, स्वयं बचाओ लाज।।

पापी लीला रच रहे, मंच बना है देश।
रावन घूमें ठाट से, धरे राम का वेश।

❖❖❖

संपर्क : विवेक विहार, हापुड़

महंगाई का अर्थशास्त्र

–राजेन्द्र त्यागी

मस्टराइन ने मास्टर के हाथ में रोटी पकड़ाई।
मास्टर ने त्यौरी चढ़ाई।
कमबख्त हाथ में सूखी रोटी पकड़ा दी।
शर्म नहीं आई
कम से कम दाल का पानी ही बना लाती।
मास्टर के तेवर देख मस्टराइन मुस्कुराई,
अरे, बैठे ठाले नखरे दिखाते हो।
जमीन पर बैठे बैठे–
आसमान की उड़ान भरते हो।
अरे, ईमान से भी ज्यादा महंगे हैं,
दाल के भाव।
भाव अपने 'लेवल' में लाओ।
मास्टर फिर झल्लाया।
दाल नहीं थी, तो आलू ही भून लाती।
कम से कम रोटी तो निगली जाती।
मस्टराइन को मास्टर पर तरस आया,
गुस्से का भाव बेभाव पचाया।
फिर मास्टर को इस तरह समझाया।
अरे, आजकल आलू के नखरे भी,
तेरे नखरों से कम नहीं हैं।
दिवाली पर तो बनाया ही था आलू का चौखा।
होली पर फिर मिल जाए, यह भी कुछ कम नहीं है।
मास्टर की अकल में बात धंसी नहीं।
वह फिर बड़बड़ाया।
चल छोड़ दाल, आलू–की भाजी,
कुछ नहीं था, तो नमक के साथ प्याज ही रख लाती।
प्याज का नाम सुन मस्टराइन भर्राई,
आंख में कड़वे तेल से आंसू लिए चिल्लाई।
दिमाग फिर गया है तेरा,
दालआटे के भाव का नहीं तुझे बेरा।
सुराज में रोटी मिल रही है, खैर मना।
आलू प्याज को अपना व्यसन न बना।

❖❖❖

संपर्क : इंदिरापुरम, गाजियाबाद
मोबाईल : 9868113044

ओ मेरे भारतवर्ष

—महावीर वर्मा 'मधुर'

ओ मेरे भारतवर्ष.... ओ मेरे भारत वर्ष
आज तेरी मैं इस हालत पर, रूदन करूँ कि हर्ष। ....ओ मेरे....

आज तिरंगा कांप रहा है, नम आँखों से झांक रहा है
गिरती राजनीति की गरिमा को मन ही मन आंक रहा है।
समझ नहीं आता कि देश का पतन है या उत्कर्ष।....ओ मेरे

आसमान पर है महंगाई, उनको देती नहीं दिखाई
लैपटॉप में बांट रहे भूखी जनता की गाढ़ी कमाई।
आम आदमी मर गया करते जीवन से संघर्ष।....ओ मेरे....

'मिड डे मील' हड़प कर जाते, गला सड़ा बच्चों को खिलाते
जाने कौन बखत ये टीचर, कक्षा में बच्चों को पढ़ाते।
शिक्षा के प्रसार का देखो कैसा ये उत्कर्ष।....ओ मेरे....

थोथे चने बाजते ज्यादा, वजीर के सुर में बोले प्यादा
सांसद से सन्तरी तक हो गये सारे भ्रष्ट, कोई कम कोई ज्यादा
इक दिन तो भई होके रहेगा बेड़ा गर्क....ओ मेरे....

भ्रष्टाचार बढ़ता ही जाये, अंधी पीसे कुत्ता खाये।
नेता से बाबू तक देखो रिश्वतखोरी चलती जाये।
बड़े–बड़े घोटालों का यहां, निकला नहीं निष्कर्ष।....ओ मेरे....

सड़सठ वर्ष की हुई आजादी, महंगाई संग बढ़ी आबादी
बनकर गूंगे देख रहे क्यों, लुटते निज घर की बर्बादी।
अभी वक्त है करना होगा, कुछ न कुछ संघर्ष।....ओ मेरे....

❖❖❖

संपर्क : हापुड़, गाजियाबाद

अगर हो जुल्म बेबस पर....

–राजेन्द्र निगम 'राज'

अगर हो जुल्म बेबस पर तो कर देते बगावत हम
नजर में कुर्सियां रखकर नहीं करते सियासत हम

सभी से प्यार करते, प्यार की उम्मीद रखते हैं
किसी से भी जमाने में नहीं रखते अदावत हम

हमें जिस हाल में रक्खा बड़ी उसकी मेहरबानी
कभी हालात की उससे नहीं करते शिकायत हम

विदेशों में पले लेकिन बड़ों के पांव छूते हैं
नए हैं पर निभाते हैं पुरानी हर रवायत हम

भरोसा खुद से भी ज्यादा जमाना हमपे करता है
किसी की भी अमानत में नहीं करते खयानत हम

किसी को ताज बख्शें और किसी को भूख मायूसी
कभी ऐसे उसूलों की नहीं करते हिमायत हम

फकीरी आन से जिनकी रहे हाकिम डरा सहमा
उन्हीं जिन्दा मिसालों की सदा करते वकालत हम

वजन हो शेर में कुछ, हो रदीफ–ओ–काफिये में दम
उसे फिर दाद देने में नहीं करते किफायत हम

सजा देकर, बरी करके, कभी फांसी चढ़ा कर के,
खुद अपने दिल में अपनी ही लगा लेते अदालत हम

❖❖❖

संपर्क : कवि नगर, गाजियाबाद

ओ वासंती पवन....

–डॉ॰ कुअँर बेचैन

बहुत दिनों के बाद खिड़कियाँ खोली हैं
ओ वासंती पवन हमारे घर आना।

जड़े हुए थे ताले सारे कमरों में
धूल भरे थे आले सारे कमरों में
उलझन और तनावों के रेशों वाले
पुरे हुए थे जाले सारे कमरों में
बहुत दिनों के बाद साँकलें डोली हैं
ओ वासंती पवन हमारे घर आना!

एक थकन–सी नव भाव तरंगों में
मौन उदासी थी वाचाल उमंगों में
लेकिन आज समर्पण की भाषा वाले
मोहक–मोहक, प्यारे–प्यारे रंगों में
बहुत दिनों के बाद खुशबुएँ घोली हैं
ओ वासंती पवन हमारे घर आना!

पतझर ही पतझर था मन के मधुबन में
गहरा सन्नाटा–सा था अंतर्मन में
लेकिन अब गीतों की स्वच्छ मुंडेरी पर
चिंतन की छत पर, भावों के आँगन में

बहुत दिनों के बाद चिरैया बोली हैं
ओ वासंती पवन हमारे घर आना!

(2)

शुक्रिया

चोटों पे चोट देते ही जाने का शुक्रिया
पत्थर को बुत की शक्ल में लाने का शुक्रिया

जागा रहा तो मैंने नए काम कर लिए
ऐ नींद आज तेरे न आने का शुक्रिया

सूखा पुराना ज़ख्म नए को जगह मिली
स्वागत नए का और पुराने का शुक्रिया

आतीं न तुम तो क्यों मैं बनाता ये सीढ़ियाँ
दीवारों, मेरी राह में आने का शुक्रिया

आँसू–सा माँ की गोद में आकर सिमट गया
नज़रों से अपनी मुझको गिराने का शुक्रिया

अब यह हुआ कि दुनिया ही लगती है मुझको घर
यूँ मेरे घर में आग लगाने का शुक्रिया

ग़म मिलते हैं तो और निखरती है शायरी
यह बात है तो सारे ज़माने का शुक्रिया

अब मुझको आ गए हैं मनाने के सब हुनर
यूँ मुझसे 'कुँअर' रूठ के जाने का शुक्रिया

❖❖❖

सभी कवि बड़े कवि नहीं

डॉ॰ कुँअर बेचैन इस दौर के शीर्षस्थ कवि हैं। वह एक मात्र ऐसे कवि हैं जो समान रूप से पढ़े अ पर उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। पारस–परस ने 'कवियों से साक्षात्कार' की एक नई शिवकुमार बिलग्रामी ने पहला साक्षात्कार डॉ॰ कुँअर बेचैन जी का लिया, जिसे यहाँ प्रस्तुत किया ज

प्रश्न : आधुनिक संदर्भों में काव्य की भूमिका क्या कम होती चली जा रही है?

उत्तर : नहीं ऐसा नहीं है। काव्य की जो भूमिका है वो हमेशा रहेगी, कारण यह है कि जब तक व्यक्ति के भीतर लय है बनी रहेगी। काव्य हमे संवेदना से जोड़ता है। भले ही आज के भौतिकतावादी युग में हम संवेदनहीन होते चले जा रहे हैं। इसि है। नहीं तो आदमी मशीन बनकर रह जायेगा। इंसान इंसान बनकर रह पाये उसके लिए काव्य सहित दूसरी कलाओं की कलाएं है उनके लिए अलग से कुछ चीजें चाहिए होती हैं। कविता ऐसी कला है जिसमें कि सबसे कम चीजें चाहिए होती है कलर और कैनवास चाहिए। संगीतकार के लिए बाद्य यंत्र चाहिए। लेकिन काव्य कला के लिए केवल शब्द चाहिए, अभिव्यक्ति फिर भी आप कवि हो सकते हैं। इसकी आवश्यकता हमेशा ही रहेगी।

प्रश्न : आजकल यह उपयोगितावाद का समय चल रहा हैं । पूर्व में जो भी मनीषी या चिन्तक होते थे उनक अच्छे विचार, सद्विचार देकर जाना हैं। लेकिन वो सदविचार इस उपयोगितावाद के कारण प्रभावित हो रहे हैं। क चिन्तित रहता है। उसका चिन्तन विचार–मूलक नही रहा। कहीं यह भटकाव काव्य पर चोट तो नहीं कर रहा?

उत्तर : जो मुख्य बात है वह है उपयोगितावाद और उपभोगतावाद। अपभोक्तावाद अलग प्रकृत्ति रही है। कविता तो हमे अब सवाल यह है कि उपयोगी किस के लिए, आत्मा के लिए, मन के लिए या शरीर के लिए। शरीर की अपनी आवश्यकताएं है आत्मा की अपनी अलग–भूख है। कविता आत्मा की भूख को शांत करती है। उसको हम सामान्य अर्थों में मन की भूख भी सकती है, कविता मुख्यतः आत्मा और मन के इर्द–गिर्द नहीं घूमती है। शरीर के इर्द–गिर्द घूमता है विज्ञान। जैसे कार है वह आत्मा की भूख है अध्यात्म आत्मा की भूख है– ईश्वर। आत्मा की भूख कुछ और है जो भीतर–भीतर नाचती है। एक प्रकार क के पीछे भागने लगा है या पैसे पर ज्यादा विचार करने लगा है– उसके पीछे एक कारण भी है। कवि भी एक सामाजिक प्र आवश्यकताएं नही थी इतनी चीज़े नहीं थी। आज विज्ञान ने हमारे सामने जितनी चीज़े प्रस्तुत कर दी हमारी आवश्यकताएं उत जाता था कि आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। लेकिन आज सचाई यह भी है कि आविष्कार आवश्यकता को जन्म देत होता, तो हम कार नहीं खरीदते। लेकिन जब चीज़े सामने आती हैं तो उनकी आवश्यकता भी हो जाती है। शिक्षा स्वास्थ्य सब पड़ता है। इसलिए कवियों के मन में भी यह भाव आने लगा कि उनके पास जो हुनर है यदि उससे पैसा कमाना संभव है तो हम के हिसाब से जरूरतें पूरी हों सकें।

प्रश्न : एक प्रश्न यह भी है कि जिन कवियों ने अपने काव्य को बाजार से जोड़ लिया है, वो तो बहुत व्यस्त मूल्य देने वाला काव्य है, वो पिछड़ता जा रहा है, वो लोगों के सामने नहीं आ रहा है। काव्य का एक उद्देश्य संरचना में योगदान करना, परन्तु ऐसे मूल्य बोधक काव्य का सृजन नही हो रहा है, हो भी रहा है तो उसका प्रच पाठक ऐसे साहित्य से दूर होते जा रहे हैं। मंच के कवियों और साहित्य के कवियों के बीच खाई बहुत चौड़ी ह अच्छा साहित्य लोगों तक कैसे पहुंचे?

उत्तर : दुनिया के सभी कवि बड़े कवि नहीं होते। जीवन के दूसरे क्षत्रों में सभी लोग महान नहीं होते। संपूर्ण दुनिया में ह्रास हुआ है। जो मानक पहले थे वो आज नही हैं। शाश्वत मूल्यों को जो मतलब है वो, उन मूल्यों से है जो मनुष्यता को जीवि लिए भौतिक वस्तुओं की भी बहुत अधिक आवश्यकता है। मनुष्यता से संबंधित मूल्य केवल अच्छे साहित्य से ही स्थापित नहीं हो

बहुत अधिक सहायक होती है। शाश्वत मूल्यों का तात्पर्य है मानव सेवा। यदि आप संपन्न है तो मानव सेवा कर पायेंगे। यदि व दोनो ओर से निराश होना पड़ेगा। वस्तुतः भौतिक रूप से संपन्न साहित्यकार, मैं समझता हूँ बेहतर रचनाएं दे सकता है।

प्रश्न : आप से एक बात और पूछना चाहूंगा कि आजकल सरकार की ओर से जो सम्मान और पुरस्कार मिलत भी सरकार की ओर से उन्हें कोई महत्त्वपूर्ण पुरस्कार या सम्मान नहीं मिला, जबकि एक–दो पुस्तक वाले साहित्यक

उत्तर : नहीं । कसक शब्द ठीक नहीं है। वैसे मेरे अन्दर कोई कसक नहीं है। दरअसल, ये सम्मान और पुरस्कार 'मैनेज होनी चाहिए। आजतक मेरे बारे में किसी ने अनुशंसा नहीं की, और न मैं किसी के पास गया।

होते – डॉ॰ कुँअर बेचैन

सुने जाते हैं। इन्होंने हिन्दी काव्य के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान दिया है। गीत, नवगीत और ग़जलों ला शुरू करने की है। इसी कड़ी में पारस–परस के संपादक हा है।

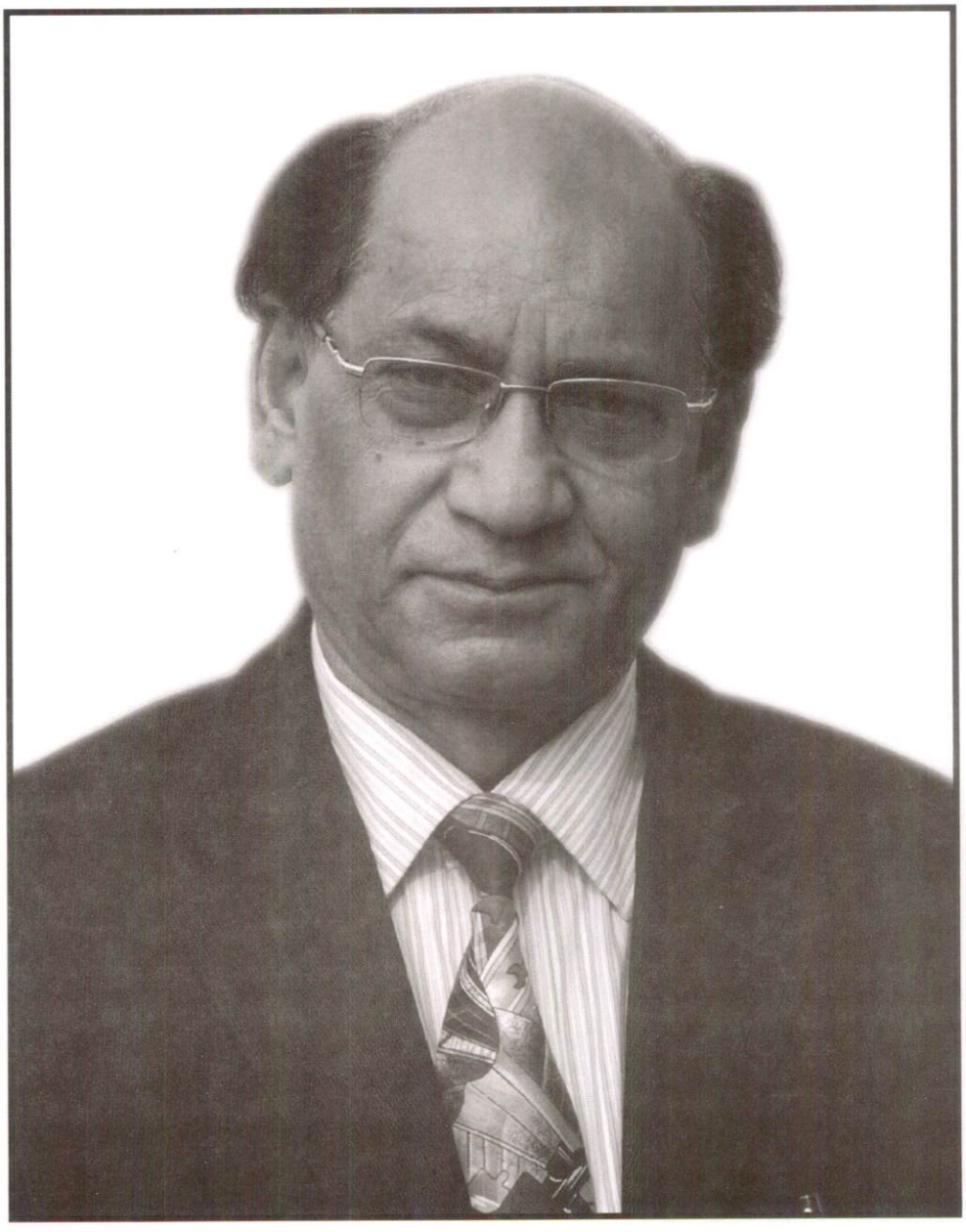

तक काव्य की भूमिका निरंतर और ज्यादा इसकी आवश्यकता श्यकता रहती है। और जितनी त्रकार है तो उसके लिए कूची, हिए। आपके पास कुछ भी न हो

ख्य ध्येय था कि समाज को अर्थोपार्जन के बारे में ज्यादा

उपयोगी रही है जीवन के लिए। की अपनी आवश्यकता हैं और सकते हैं, जो मन को शांत कर ारे शरीर के लिए बनी है। कार नन्द है वह आपने कहा कि अर्थ होता है, पहले जमाने में अंदर ही बढ़ती चली गई। पहले कहा । यदि कारों का आविष्कार नहीं नों के लिए बहुत धनखर्च करना थोड़ा पैसा कमा लें, ताकि आज

गये हैं, ऐसे में जो शाश्वत ता कि एक अच्छे समाज की नहीं हो पा रहा। श्रोता और जा रही है। ऐसी स्थिति में

वन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों का खें। मनुष्य को जीवित रखने के भौतिक वस्तुएं भी इन मूल्यों में

ी है तो मानव सेवा कैसे कर पायेंगें। साहित्य सृजन हेतु सर्वोत्तम समय गरीबी से जूझने में निकल जायेगा तो फिर अंदर–बाहर

, तो क्या इनके बाबत कभी मन में ऐसा ख्याल आया कि कुअँर बेचैन ने हिन्दी साहित्य को इतना कुछ दिया है, फिर ों को भी बड़े–बड़े पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हो गये। क्या मन में इस तरह की कोई कसक है?

कये जाते हैं। मैंने कभी ऐसा कोई प्रयास नहीं किया। पुरस्कार और सम्मानों के लिए किसी न किसी बड़े ओहदेदार की अनुशंसा

वो पनघट तट बन्द हो गया

–कमलेश त्रिवेद 'फर्रूखाबादी'

फूलों का रस गन्ध खो गया।
यह कैसा अनुबन्ध हो गया?

पायल भी कभी छनकती थी,
चूड़ी भी कभी खनकती थी।
रसरी भी जहाँ सरकती थी,
गगरी भी जहाँ छलकती थी।

वो पनघट तट बन्द हो गया।
यह कैसा अनुबन्ध हो गया?

बैलों की घन्टी बजती थी।
हाँडी में मथनी चलती थी।
चौरे पर बाती जलती थी।
माटी में गन्ध उमड़ती थी।

दृश्य समूचा बन्द हो गया।
यह कैसा अनुबन्ध हो गया?

नीमों पर झूले पड़ते थे,
आँगन में गीत उमड़ते थे।
हाथों में मेहँदी रचती थी।
ढोलक पर पांव थिरकते थे।

घुँघरू का मुख बन्द हो गया।
यह कैसा अनुबन्ध हो गया?

महीनों सावन की मस्ती थी,
रंगों में डूबी बस्ती थी।
उड़ती थी तितली फूल फूल,
खुशियों की कलियाँ हँसती थी।

मिलन दिलों का बन्द हो गया।
यह कैसा अनुबन्ध हो गया?

कैसी आँधी चली अचानक,
गूँज रहा है शोर भयानक।
सूने आँगन और चौपाल,
रीत गये वे मधुर कथानक।

दिल का द्वारा बन्द हो गया।
यह कैसा अनुबन्ध हो गया?

मय तनया बन कछनी काछे,
क्लब बारों में बाला नाचे।
कर के दहन संस्कारों के,
फिल्मों के संवादन बाँचे।

रिश्तों का नद बन्द हो गया।
यह कैसा अनुबन्ध हो गया?

मय तनया बन कछनी काछे,
क्लब बारों में बाला नाचे।
कर के दहन संस्कारों के,
फिल्मों के संवादन बाँचे।

रिश्तों का नद बन्द हो गया।
यह कैसा अनुबन्ध हो गया?

दौड़ प्रगति की कैसी है ये,
खारे जल के जैसी है ये।
मारी जाय कोख में बेटी,
मनुज नहीं बस वहशी है ये।

बाबुल का दर बन्द गया।
यह कैसा अनुबन्ध हो गया?

❖❖❖

संपर्क : 71, अवास विकास,
बुलन्द शहर रोड़, हापुड़

विश्वास की नींव.....बेटियाँ

–पूनम माटिया

सोचती हूँ
तो सोचती चली जाती हूँ
जाने क्यूँ
आँखें नम हो जाती हैं

नन्ही तान्या, तरंग
तोतली जुबान में
'मम्मी' कहती
सामने आ जाती हैं

पल–पल बढ़ते, दौड़ते, भागते
खेलते हँसने–झगड़ते
देखा उनको
कभी नन्हे–नन्हे ग्रास
खिलाती थी मैं
आज बिठा के
खाना खिलाती मुझको

नृत्य, नाटक,
गृह–कार्य, प्रोजेक्ट
रंग भरे
हर कला के उनमें
मुझे मंच के लिए अब
तैयार कराती हैं वो
डांट–डपट के
नृत्य सिखाती
नेह अपना
झलकाती है वो

घर भर में
रौनक है उनसे
कल दूजे घर को
सजाएँगी वो
सूना हो जाएगा आँगन
सोच के दिल
जब घबराता है मेरा
तुरंत हँसते हुए
सामने आ जाती हैं वो
अकेलापन
न खलेगा कभी
इस अहसास को पल–पल
दृढ कर जाती हैं वो
मेरे वजूद को
विश्वास की नींव
दे जाती हैं वो

❖❖❖

कोई हाथ भी न मिलायेगा, जो गले मिलोगे तपाक से
ये नये मिज़ाज का शहर है, ज़रा फ़ासले से मिला करो

–बशीर बद्र

बसंत

–निरुपमा मिश्रा

धरती ने ओढ़ी चुनरिया प्रीत की
पग धरुं मै भी डगरिया मीत की

मन के द्वारे रंग आये बसंत
लाज की देहरी लांघ जाये अनंत
देख लूँ मैं भी नजरिया रीत की
पग धरुं मैं भी डगरिया मीत की

रंग रंगाऊँ प्रियतम की लगन में
जग भूल जाऊँ प्रीत की जतन में
सुर में गाऊँ संवरिया गीत की
पग धरुं मैं भी डगरिया मीत की

भाव दुःख के सब विस्मृत हुए
स्पर्श प्रिय के अब अमृत हुए
मन में रहे लहरिया संगीत की
पग धरुं मैं भी डगरिया मीत की

(2)

–प्रियतम अनुगामी

प्रियतम अनुगामी
चली मैं
आत्ममुग्धा सी
प्रेमिल–स्पर्श–पवन
जैसे हो जीवन अमृत
क्षितिज के पार
मिलन तत्पर
ये अम्बर और वसुन्धरा
मिलना भी है अनुपम
शाश्वत, युग निर्धारित
विह्वल–सुकोमल कामिनी
पुष्पवर्षा सी जलबिन्दुयें
हो विभोर चपल पड़ीं
अधीर प्रेमपथ गामिनी
सहज संकोच लज्जानवत!!

❖❖❖

नग़मों की जगह दिल से अब आह निकलती है,
जब साज़ बदलता है, आवाज़ बदलती है
है मेरी मोहब्बत का उन पर भी असर शायद,
बेवजह ख़ामोशी से, इक बात निकलती है
अब किससे यहाँ कीजे, उम्मीद वफ़ाओं की,
जब वक़्त बदलता है हर चीज़ बदलती है

–क़मर मुरादाबादी

पथिक

—मनीषा जोशी मनी

अगम कठिनाई है सुगम तुम प्रेम बना दो
मेरे जीवन से अन्धकार मिटाकर
प्रकाश से तुम इसे सजा दो
मेरे प्रेम को ग्रहण कर
मेरे हृदय में ज्योति जगा दो
अगम कठिनाई है सुगम तुम बना दो

अगाध प्रेम उदित यौवनों में
तुम स्वयं को उद्धारक बना दो
धूमिल नेत्र से अश्रु मिटाकर
उसमें अपनी छवि बसा दो
अगम कठिनाई है सुगम तुम बना दो

गीत कई हर्ष के हृदय में
कंठ से वो गीत गँवा दो
मेरे दुख भय क्रोध मिटा दो
अगम कठिनाई है सुगम तुम बना दो
मेरे जीवन से अन्धकार मिटाकर
प्रकाश से तुम इसे सजा दो

❖❖❖

संपर्क : ए1, 406 सिल्वर सिटी,
ग्रेटर नोएडा

चुपके–चुपके रात दिन आँसू बहाना याद है
हमको अब तक आशिकी का वो ज़माना याद है
खैंच लेना वो मेरा परदे का कोना दफ़अतन,
और दुपट्टे से तेरा वह मुँह छुपाना याद है

—हसरत मोहानी

चाहत है तुझको मेरी

– शुभदा वाजपेयी

(1)

चाहत है तुझको मेरी, मुझे तेरी आरजू है
तेरे दिल में मैं बसी हूँ, मेरे दिल में तू ही तू है।।

बस ये खता है मेरी, मैनें जो तुझको चाहा
तुझसे है ये शिकायत, मेरा प्यार न निबाहा।
रातों को आये सपने, सपनें में तू ही तू है।।

तेरे दिल में मैं बसी हूँ, मेरे दिल में तू ही तू है।।

तेरे बिना ये जीवन, अब कैसे मैं बिताऊँ
तेरे बिना मैं किसको, अपनी व्यथा सुनाऊँ
मेरी जिंदगी भी तू है, मेरी बंदगी भी तू है।।

तेरे दिल में मैं बसी हूँ, मेरे दिल में तू ही तू है।।

हूँ खुशनसीब कितनी, पाया जो साथ तेरा
थामे रहूँ हमेशा, हाथों से हाथ तेरा
मेरी यही तमन्ना, मेरी ये ही जुस्तजू है

तेरे दिल में मैं बसी हूँ, मेरे दिल में तू ही तू है।।

❖❖❖

(2)

होली गीत

फागुन के दिन आये रे
सब होली खेलन जाये रे।।

प्रियतम के संग ही सब सोहे
सजे होंठो पर मुस्कान रे
गा रहा मन फाग धुन अब
सज रहा साज श्रृंगार रे ।।

फागुन के दिन आये रे
सब होली खेलन जाये रे।।

धरती पर है रंग बिखरे रे
उमंग है छायी अपार रे
होली खेलूँ पिया घर आये
छोड़ दिया सब लोक लाज रे।।

फागुन के दिन आये रे
सब होली खेलन जाये रे।।

सम्पर्क : एफ–263 लाडो सराय
नई दिल्ली – 24
मो0: 09911917626

किसी चेहरे पे तबस्सुम, न किसी आँख में अश्क,
अजनबी शहर में अब कौन दोबारा जाए।
हारना बाज़िए–उलफ़त का है इक खेल मगर,
लुत्फ़ जब है कि इसे जीत के हारा जाए

–साहिर होशियारपुरी

तुम बिन

– डा0 स्वीट एंजिल

सुंदर, सुवर्ण, सु–कांतिमय
तीखे नयन, कोमल अधर
सदस्नाता, कोमलांगी
स्मित–बदन–ढली–तराशी
जीती–जागती पद्मिनी
चित्र–लिखित सा निहारूँ मैं
जल से भीगी केश–राशि
बूंद ढुलकी ज्यूँ कंठ से नीचे
आह से निकली मेरे बदन से
आह! निराला रूप कितना
पी जाऊँ घूँट–घूँट कर
इसका रूप–लावण्य

चतुर–चितवन
इतराती–इठलाती
समक्ष मेरे, मैं ठगा सा, बुत बना सा
हृदय से ले रहा हिलोर कितनी
आह–मेरा पुरुष जगा सा
भर लूं अंजरी इस यौवन की
इस चाँद से चमकते मुख पर
अंकित कर दे छवि अधरों की

ए चाँद ए सितारों बता दो मुझे
कौन हूँ मैं क्या हूँ मैं?
क्यों साँसे लिए जा रही हूँ यूँ तनहा?
तभी एक सितारा मुस्कराया और
शरारत से बोला जरा ध्यान तो दे
मैं हूँ तेरा हमसाया
जब भी तू कहती है कि मैं तनहा हूँ
वो कहीं से कहता है कि मैं हूँ न!
और उसका अक्स उभर आता है मुझमें।।

❖❖❖

सम्पर्क : बी – 182, रामप्रस्थ
नई दिल्ली।
मो0: 09990018989

प्रलय

– गुल सारिका

निश्चेष्ट धरा को
अपनी गोद में उठाए
समुद्र हाहाकार कर उठा
धरा थरथराई
बुझने लगी असंख्य जीवन की लौ।
अशांत समुद्र ज्वार को
सम्भाल नहीं पा रहा था
फिर भी धरा को समझा रहा था
आओ सो जाते हैं
सब कुछ भूल जाते हैं
आदि से लेकर अंत तक
कहाँ रह पाए मर्यादित
मनुज की तृष्णा और लालसा से
सदैव रहे आच्छादित
आज जबकि काल की जिह्वा
लपलपा रही है
कर्मों का खाता बन्द करते हैं
आओ हम तुम सो जाते हैं।

पहुँचा हुआ पीर
वह पर्वत गहन गम्भीर
दरक कर हिल उठा
दरकना टूटना बिखरना
पल भर में ही हो उठा
पर्वत खील खील बिखर उठा
प्रकृति हतप्रभ और पुरुष मौन था

अंतरिक्ष की छाती पर
बेसुध पड़े ग्रह नक्षत्रों में
गुरु अब भी होश में थे
सूर्य के प्रकोप से वह भी
कहाँ बच पाए
चरणों में एक क्षुद्र ग्रह
सिसक रहा था....
बार–बार जाने क्या–क्या
पूछ राह था
उस शावक ग्रह के पीठ पर
हाथ फेरते
गुरु स्वयं कांप रहे थे
फिर भी वह कह रहे थे
''यात्रा समाप्त हुई
दायित्व पूर्ण हुआ
अब चल अपने घर
जहाँ कोई प्रबुद्ध नहीं
महा प्रयाण.... हां वत्स
वह क्षुद्र ग्रह बस टूटने ही वाला था
जीवन का मोह कहाँ छूटने वाला था
कसकर गुरु की दाढ़ी थाम ली
क्लांत गुरु पीड़ा में भी हंस पड़े
और हौले से अपनी दाढ़ी छुड़ाई
क्षुद्र ग्रह चल पड़ा
अंतिम परिणति की ओर
आज टूटते तारे को देख
कोई मनोकामना
मांगने को शेष ना रही
सृष्टि यह उजड़ी गृहस्थी
बस देखती रही
प्रकृति हतप्रभ और पुरुष मौन था।

❖❖❖

सम्पर्क : gulsarika2009@gmail.com

क्या तुम्हें एहसास है

—महुआ महक

दूर हूँ मैं आज तुम से
क्या तुम्हें एहसास है ये
नहीं मिलने की है आस कोई
क्या तुम्हारा दिल भी उदास है
होता है मन मेरा विचलित
करता है अब ये ख्वाहिशें
हरदम ये सँवरता है
हरदम ये निखरता है
तुम्हारे लिए....

सोचा, आज लिखूँ कुछ मैं
अपने दिल को खोलूँ मैं
जो भाव मेरे दिल में हैं
उनको कुछ तोलूँ मैं
तुम्हारो लिए....
कहता है यह दिल
प्यार है इसको
हुआ ये कैसे,
कह दें किसको
मचलता है अब ये तो हरपल
तड़पता है अब ये तो हरपल
तम्हारे लिए.....
क्या जाने क्या सोचा इसने
क्या जाने क्या खोजा इसने
हरदम कुछ चाहा इसने
हर पल कुछ पूजा इसने
तुम्हारे लिए.....

❖❖❖

सम्पर्क : ज्ञानेश्वरी इंस्टिट्यूट
ग्रेटर, नोएडा

समय की किताब

– उदय प्रताप

हमारा तुम्हारा पुराना हिसाब
चुकाओगे कैसे बता दो मुझे
बुझ सा गया मेरे दिल का चराग
जलाओगे कैसे बता दो मुझे

हो मदहोश तुम भी, हैं मदहोश हम भी
जो तन्हा हुए तुम तो खामोश हम भी
नहीं लौट सकती समय की किताब
बुलाओगे कैसे बता दो मुझे।।

तेरा दिल भी टूटा मेरा दिल भी टूटा
के बचपन जवानी बुढ़ापे ने लूटा
उजड़े हुए गुल को फिर से गुलाब
बनाओगे कैसे बता दो मुझे।।

हुए दूर तुमसे, कहाँ आ गये हम
जमाने से फिर मात क्यूँ खा गये हम
ये पूछे जमाना तो क्या दूँ जवाब
छुपाओगे कैसे बता दो मुझे।।

न मैं याद करता, न तुम याद आते
जो दिल की लगी हो तो कैसे बुझाते
भुला ना सके तुमको पी के शराब
भुलाओगे कैसे बता दो मुझे।।

रंगीन दिलकश कभी रात होगी
हमारी तुम्हारी मुलाकात होगी
आती नहीं नींद, रंगीन ख्वाब
दिखाओगे कैसे बता दो मुझे।।

❖❖❖

सम्पर्क: मो0: 09450142143

वो अक्सर हमें भूल जाते हैं

– नरेश मलिक

वो अक्सर हमें भूल जाते हैं,
पर हम हमेशा उन्हें याद रखते हैं।

वो करके वादा मिलने का,
हर किया वादा तोड़ देते हैं।

पर हम हर किया वादा,
बड़ी शिद्दत से निभाते हैं।

वो प्यार करने का सिर्फ़ रिवाज निभाते हैं,
हम हर रिवाज भूलकर बस उन्हें सीने से लगाते हैं।

यह अपने अपने जीने की अदा है यारो,
कुछ जिन्दगी के चमन से सिर्फ़ खुशियों के फूल चुनते हैं,
पर कुछ नश्तरीन काँटों को भी सीने से लगाते हैं।

जीते तो सभी हैं यारों, पर कुछ सिर्फ़ जीने के लिए जीते हैं,
जो दुनिया में आते हैं और बस चले जाते हैं,
पर कुछ इस कदर जीते हैं, कि मरकर भी याद आते हैं।

❖❖❖

संपर्क : 16/3, सुभाष नगर
नई दिल्ली–27
मो॰ : 09891483218
maliknaresh744@gmail.com

आँखों में रहा दिल में उतर कर नहीं देखा
किश्ती के मुसाफ़िर ने समन्दर नहीं देखा
बेवक़्त अगर जाऊँगा सब चौंक पड़ेंगे
इक उम्र हुई दिन में कभी घर नहीं देखा

–बशीर बद्र

सागर की गहराई

– विमलेन्दु सागर

मेरी गजलों में तुम ही शब्द बनकर आई हो।
मेरी महफिल हो तुम, तुम ही मेरी तनहाई हो।

रहा मदहोश सारा दिन बाग का हर शै
आज भी तुम वहाँ सुबह में गुनगुनाई हो।।

ढूंढ के हारी जमाने की पारखी नजरें
मेरी तस्वीर को दिल में कहाँ छुपाई हो।।

छन कर आती रही बदन से चाँद की किरणें
यूं लग रहा है चाँदनी में नहा आई हो।।

अब कोई स्वप्न मेरी आंखें न दिखायें मुझे
जबसे नजरों में मेरी जान तुम समाई हो।।

हद है अशआर मेरी नाज दिखाती मुझको
क्या कहूं मैं उसे तुम ही तो सर चढ़ाई हो।।

तुम क्या हो मेरे लिये ये तुम मुझसे पूछो
हूँ मैं सागर मगर सागर की तुम गहराई हो।।

❖❖❖

पीयूष पाचक की कविताएं

(1)

आरोप

नेताजी अक्ल के
कच्चे,
घर में जन्में
जुड़वाँ बच्चे,
एक पत्रकार ने कहा,
सब ईश्वर की लीला
प्रभु की करामात है।
नेताजी बोले, "ज़रूर
विपक्ष का हाथ है।"

(2)

राज़ की बात

शेर सिंह मोटा ताज़ा
पूरे जंगल का राजा,
वेजीटेरियन हो गया
पशुओं के प्रेम में खो गया
नज़ारा इतना विचित्र
हो गया
शिकार था जो पहले
अब वो मित्र
हो गया
दुश्मनों में प्यार उमड़
आया था,
पता है! जंगल में
चुनाव आया था।

क्या तुम्हे याद है

– सौरभ सीतापुरी

क्या तुम्हें याद है उस दिन की वो हसीं शाम
जब तेरे साथ चंद पलों को जिया था
जब लहरों की अठखेलियों को
एक दूजे के मन से निहारा था
जब तेरे कंधे पर सर रख कर
डूबते सूरज को देखा था
डूबते सूरज ने जैसे कुछ इशारा किया था

हमने उसने फिर आने का वादा किया था
उसी सूरज की लाली जैसे तेरी सुर्ख आँखे थीं
उन आँखों में कुछ शरारत सी थी
महकती मदमस्त हवा थी मदहोश शमां था
धड़कनों पे हमारी इख्तियार न था
कभी पहले यूँ दिल बेकरार न था
कस कर हाथ मेरा तूने थाम लिया था
बिन कहे ही बहुत कुछ जान लिया था

लहरों से भींगी किनारों की रेत थी
खामोश अलसाई सी हमारी चाल थी
हम एक दूजे की बाहों में खोये से थे
काश ये पल ये वक्त यहीं रुक जाये
बिन कहे ही एक दूजे से वादे लिए थे
खुदा से बस ये ही एक दुआ की थी
बिखरी चांदनी की गवाही ली थी
तारों से भी साथ देने की ताकीद की थी
खामोश सागर से एक इल्तजा ली थी
गर तुझे भी प्यार है अपनी लहरों से
गर जानता है तू भी अपनी प्यार की गहराई को
दुआ करना न सहना पड़े कभी जुदाई को
जुदा गर हम हो गए तो दोष किसे देंगे
खुद को खुदा को या उसकी खुदाई को।।।

❖❖❖

सम्पर्क : मो0: 0995370412

राहों से गुजरते हुए

– बादल चौधरी

तुम्हें राहो से गुजरते हुए,
अक्सर मैनें देखा है,
अश्क तो ये सूख गये मगर
उनके निशाँ को मैनें देखा है,

पूछ तो लेता तुझसे
तेरी हँसी से छुपे दर्द को,
मगर अपनी फकीरी से
अपने लबों को सिलते मैनें देखा है,

चाँद थे तुम
हमेशा मेरे लिए,
तुम्हें टूटते हुए कब मैनें,
सपनों में देखा है,

तुम्हारी गुनगुनाहट
बिखरती रहे हमेशा जहाँ में
इस दुआ में खुदको
हमेशा मैनें देखा है,

जो बेफिक्री दिखती थी
तेरी हर बात में,
अब सिल्वटों को तेरे
माथे पे मैनें देखा है,

हुस्न वाले तो बेपरवाह
अक्सर होते ही हैं,
तभी तो तेरे प्यार में
गरीब की जिंदगी को जलते मैनें देखा है,

उमर की साँसे
जो ढल रही है तुम्हारी,
बीते दिनों को याद करते
मैनें तुम्हें देखा है,

छुपा लो तुम खुद को,
अब लाख नकाबों में,
मगर तेरे अश्कों के निशाँ को
अक्सर मैनें देखा है।

❖❖❖

आया रंगों का त्यौहार

– राधे बैरवा

आया रंगों का त्यौहार
ले कर खुशियाँ हजार
आज ना कोई अपना
ना कोई पराया
सबको एक ही रंग में
रंगना मेरी सरकार
आया रंगों का त्यौहार
भूल कर अपने सारे बैर
आज गले लगा लो
जो थे अब तक गैर
ये पल बीत गया
तो होगी तुम्हारी हार
आया रंगों का त्यौहार
प्यार के रंग से
बच ना जाये कोई
भूल कर जात–पात का भेद भाव
करो सबसे प्यार
आया रंगों को त्यौहार।

❖❖❖

जादूगर और कलुआ

–शशिकांत सिंह 'शशि'

जादूगर ने पिटारे से निकाले
रॉकेट, रोबोट, और कम्प्यूटर
लोग तालियाँ बजाने लगे
उदास हो गया कलुआ।
जादूगर ने पढ़े मंत्र
बना दिये कागज के
मंदिर–मस्जिद और गिरजाघर
लड़ने लगे लोग,
लहूलुहान हो गया कलुआ।
जादूगर ने निकाली जादू की छड़ी
बनने लगे कंपलेक्स लग्जरी कारे
उछलने लगे शेयर बाजार,
मुदित हो गया विश्व बैंक
धम्म से गिरा कलुआ,
बेचारा
मिट्टी में मुँह छुपाये पड़ा था
सुबह से रोटी के लिए खड़ा था।

❖❖❖

संपर्क : जवाहर नवोदय
विद्यालय शंकर नगर,
नांदेड, महाराष्ट्र

वो तेरी जान होती है

– दीपक कुमार शुक्ला

मोहब्बत की यही सबसे बड़ी पहचान होती है
जो तेरा हो नहीं सकता वो तेरी जान होती है

सुकूँ पाने की चाहत में मुसीबत मोल लेते हैं
ये पागल दिल की हसरत भी बड़ी नादान होती है

बहुत समझाया यारों ने कि उन में मत जाना
शरीफों की शराफत भी वहाँ बेजान होती है

मचल कर मौज होती है फना मिलकर किनारो से
वो मौजे कब भला अंजाम से अंजान होती है

मिटा लेते है हस्ती को शमाँ पे हंस के परवाने
ये दुनिया भी दिवानेपन से यूँ हैरान होती है

बहुत ऊँची दरो–दीवार होती है जमाने की
मगर रूहों से टकराये कहाँ वो जान होती है

❖❖❖

संपर्क : डी–17, ताजपुर पहाड़ी
बदरपुर बार्ड, नई दिल्ली

"लोकतन्त्र"

– आकाश कुलश्रेष्ठ

कल्पना नहीं मुझको आती, मैं बस सच्चाई लिखता हूँ।
मैं भारत का लोकतन्त्र हूँ, बाजारों में बिकता हूँ।।

मुझको अच्छा चाव लगा है, राजनीति में वोटो का।
कोई फर्क नहीं पड़ता है, जनगण मन की चोटों का।।
मेरा कोई सम्मान नहीं, केवल सम्मानित दिखता हूँ
मैं भारत का लोकतन्त्र हूँ, बाजारों में बिकता हूँ।।

मेरी नीलामी होती है, जनपथ पर चौराहों पर
देखो कितना खून लगा है, भारत माँ की बाहों पर
खादी खाकी की लापरवाही पर हर रोज सिसकता हूँ
मैं भारत का लोकतंत्र हूँ, बाजारों में बिकता हूँ।।

❖❖❖

सम्पर्क: मोहन नगर, गाजियाबाद
मो॰ : 09410480997

सर्वभाषा संस्कृति समन्वय समिति द्वारा सम्मान समारोह....

देश की प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्था–सर्वभाषा संस्कृति समन्वय समिति प्रतिवर्ष देश के जाने–माने साहित्यकारों/कवियों को समर्पित एक कलेंडर निकालती है। इस कलेंडर में उनका चित्र प्रकाशित कर संकेत रूप में उनकी सेवाओं को रेखांकित किया जाता है। संस्था विधिवत कलेंडर का लोकार्पण समारोह भी करती है। इसी क्रम में इस वर्ष भी सर्वभाषा संस्कृति समन्वय समिति की ओर से कलेंडर लोकार्पण और कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। यह शानदार आयोजन भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के नई दिल्ली, आई टी ओ स्थित आज़ाद भवन सभागार में किया गया। समारोह का उद्घाटन वरिष्ठ सांसद और संसदीय राजभाषा समिति के महत्त्वपूर्ण सदस्य श्री सत्यव्रत चतुर्वेदी ने किया। समारोह का शुभारंभ माननीय श्री सत्यव्रत चतुर्वेदी और सर्वभाषा संस्कृति समन्वय समिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष पंडित सुरेश नीरव ने दीप प्रज्ज्वलित कर किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता सुलभ साहित्य अकादमी के उपाध्यक्ष और साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त कवि डाक्टर गंगेश गुंजन ने की। मुख्य अतिथि भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के उप महानिदेशक और गगनांचल के संपादक अनवर हलीम थे।

इस कार्यक्रम में मौजूदा वक़्त के कई जाने माने कवि और शायरों ने अपने काव्य पाठ से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। काव्य पाठ करने वाले प्रमुख कवि और शायर थे – (डॉ॰ कुँअर बेचैन, बनवारी लाल गौड़, (संपादक : गौड़ टाइम्स), काजी तनवीर, डॉ॰ अशोक मधुप (अध्यक्ष : कायाकल्प), शिवकुमार बिलग्रामी (संपादक : पारस–परस), अरुण सागर (संपादक : साहित ऋचा) राकेश पाण्डेय (संपादक : प्रवासी संसार), अशोक वर्मा, प्रकाश प्रलय, गिरीश मिश्र, अशोक ज्योति, आदिल रशीद। इसके अलावा सुश्री पूनम माटिया तथा शाइना खान ने भी इस अवसर पर बहुत ही बेहतरीन काव्य पाठ किया। कवि सम्मेलन का संचालन पंडित सुरेश नीरव ने किया। कवि सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी कवियों के साथ साथ लंदन से आये प्रवासी हिन्दी सेवी तेजेन्द्र शर्मा को भी शाल, प्रतीक चिह्न और मान पत्र देकर सम्मानित किया गया।

बायें से दायें – सर्वश्री अनवर हलीम, पं सुरेश नीरव, सत्यव्रत चतुर्वेदी, डॉ॰ गंगेश गुंजन और बी. एल. गौड़

भाषा सदोदरी–हिन्दी

भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को भाषाई क्षेत्र में आगे बढ़ाने के उद्देश्य से हाल ही में ग्रेटर नोएडा स्थित ज्ञानेश्वरी इंस्टिट्यूट में कवियों/रचनाकारों की एक बैठक हुई। इस बैठक में देश के कई जाने–माने कवियों के अतिरिक्त, सोमदीक्षित तथा कनुप्रिया जैसे कुछ वरिष्ठ कवियों/साहित्यकारों ने भी भाग लिया। बैठक में सर्वसम्मति से–भाषा सहोदरी–हिन्दी के नाम से एक साहित्यिक संस्था का नामकरण और प्रतिष्ठापन हुआ। इस संस्था का उद्देश्य हिन्दी काव्य जगत के साथ–साथ इसके गोत्र से जुड़ी अन्य बोलियों और भाषाओं के साहित्य को बढ़ावा देना है। इसके अलावा भाषा सहोदरी–हिन्दी का प्रमुख उद्देश्य यह है कि मौजूदा युवा पीढी और आनेवाली युवा पीढ़ी को साहित्यक दृष्टि से समृद्ध और सक्षम बनाया जाये। अनुभवी और सिद्धहस्त साहित्यकारों से सीखने की चाह रखने वाले युवा साहित्य प्रेमियों के लिए भाषा सहोदरी–हिन्दी प्रत्येक महीने एक काव्य गोष्ठी–सह–काव्य कार्यशाला का आयोजन करायेगी जिसमें युवा रचनाकारों के काव्य पाठ के बाद उन पर विचार–विमर्श पश्चात् अनुभवी साहित्कार अपना मन्तव्य व्यक्त करेंगे, ताकि नवोदित और युवा रचनाकार ज्ञानवृद्ध साहित्यकारों के अनुभवों का लाभ उठा सकें। इन काव्य गोष्ठियों में भाग लेने वाले सर्वाधिक उल्लेखनीय और सराहनीय कवियों/साहित्यकारों की रचनाओं/लेखों/कहानियों को भाषा सहोदरी–हिन्दी पत्रिका में प्रकाशित कर इन्हें पहचान दी जायेगी और उपयुक्त मंच प्रदान किया जायेंगा।

प्रस्तुति : सखी सिंह
मो॰ : 09990284190

कौन मेरा है हमसाया

–शिवकुमार बिलग्रामी

लिखते गाते गीत ग़ज़ल यह, कौन नगर में फिर आया
किसके दिल में पीर उठी है, कौन मेरा है हमसाया

ये आलाप भरा है किसने, मेरे दिल को चीर गया
ऊँचा सुर तो दुःख का सुर है, किसने दुःख सुर में गाया

किसका प्यार लुटा है फिर से, किसके सपने टूट गये
किसके दिल पर चोट लगी है, कौन तड़प कर बलखाया

किसने वार सहे हैं सबके, किसने सबको मुआफ़ किया
जिस्म–जिगर–जाँ ज़ख़्मी पाकर, कौन दिलावर मुस्काया

(2)

कहते हैं कि दुनिया में, वो शख़्स बड़ा होगा
जो झुक के चला होगा, मज़बूत खड़ा होगा

जो हार गया होगा, हर जीत को खुश होकर
अपनों से न ग़ैरों से, वो खुद से लड़ा होगा

पत्थर वो नहीं होगा, पानी भी न होगा वो
जो आँच मिले पिघले, वो मोम कड़ा होगा

तुम खोज रहे उसको, लोहे के बाजारों में
सोने की अँगूठी में, वो रत्न जड़ा होगा

❖❖❖

सृजन-स्मरण

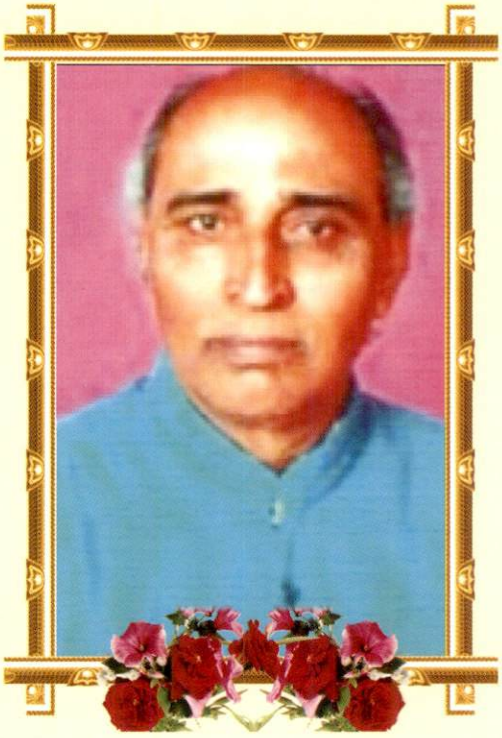

कैलाश गौतम

(जन्म : 8 जनवरी, 1944; निधन : 9 दिसम्बर, 2006)

हँस हँस कालिख बोने वाले
चाँदी काट रहे
हल की मूठ पकड़ने वाले
जूठन चाट रहे
जाने वाले जाते–जाते
सब कुछ झाड़ गये
भुतहे घर में छोड़ गये हैं
सौ सौ छुतहे रोग
यह कैसी अनहोनी मालिक
यह कैसा संयोग

–कैलाश गौतम

सृजन-स्मरण

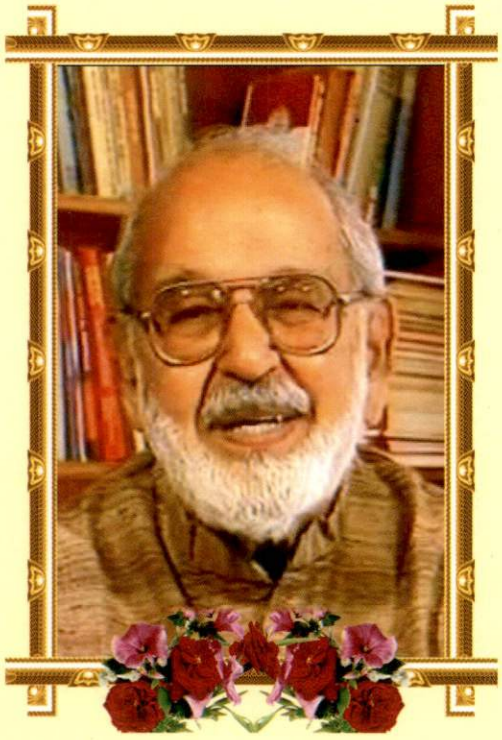

अज्ञेय

(जन्म : 7 मार्च, 1911; निधन : 4 अप्रैल, 1987)

वे रोगी होंगे प्रेम जिन्हें अनुभव–रस का कटु प्याला है
वे मुर्दे होंगे प्रेम जिन्हें सम्मोहनकारी हाला है
मैंने विदग्ध हो जान लिया, अन्तिम रहस्य पहचान लिया
मैंने आहुति बनकर देखा, यह प्रेम यज्ञ की ज्वाला है!

– *अज्ञेय*